सुश्री उषा प्रियंवदाजी के कथात्मक साहित्य में प्रतिबिंबित समाज की समस्यायें

चतुर्थ अध्याय

सुश्री उषा प्रियंवदाजी के कथात्मक साहित्य में प्रतिबिंबित समाज की समस्यायें

मानव समाज के आरंभ से अंत तक हर युग में समस्यायें रही हैं। परिस्थिति और समयानुसार इन समस्याओंमें परिवर्तन आता रहा है। आज की परिवर्तित परिस्थितियों में समस्याओं की संख्या बढ़ गयी है। मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अब समस्याओं ने प्रवेश किया है। इन समस्याओं की जकड़ इतनी दृढ़ है कि वर्तमान युग में व्यक्ति भी अपने आप में एक समस्या बन गया है।

एक सजग लेखिका होने के नाते सुश्री प्रियंवदाजी ने अपने कथात्मक साहित्य में कल्पना के रंगीन स्वप्नों के मोह को छोडकर समाज की वास्तविकता को सूक्ष्मता से अंकित किया है। उषा प्रियंवदाजी का अधिकांश कथात्मक साहित्य नारी प्रधान है। नारी ही नारी को अच्छी तरह से समझ सकती है। प्रियंवदाजी स्वयं पढी-लिखी कामकाजी महिला है, इसीलिए नारी से संबंधित सभी-घर और बाहर की-समस्याओं को उन्होंने अपने कथात्मक साहित्य में चित्रित किया है। साथ ही साथ आधुनिक समाज की विभिन्न समस्याओं को भी उन्होंने यथार्थ के धरातल पर अंकित किया है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में हमने सभी समस्याओं को न लेकर, आज की कुछ ज्वलंत समस्याओं की ही विस्तार से चर्चा की है। वे समस्यायें निम्नलिखित हैं --

अजनबीपन की समस्या --

अजनबीपन की समस्या आधुनिक युग की अत्याधिक गंभीर समस्या है। आज मानव जीवन की सबसे महानतम् त्रासदी यह है, कि व्यक्ति भीड में अकेला होता जा रहा है। मनुष्य सिमट रहा है। और जीवन पोषक मूल्यों से निरंतर कटता जा रहा है। इस कटते जाने की प्रक्रिया की छटपटाहट को आधुनिकों ने अपने अनुभव की कसौटी पर देखा परखा है। सुश्री उषा प्रियंवदा चूँकि आधुनिक युग की लेखिका हैं। अत: उन्होंने अपने समूचे साहित्य में अजनबीपन तथा अकेलेपन की समस्या को अत्यंत मार्मिक ढंग से चित्रित किया है।

आज व्यक्ति और समाज के बीच का संघर्ष व्यापक रुप में दिखाई देता है। ` जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्यक्ति परंपरागत रुढियों, परंपराओं, मान्यताओं का भंजन कर रहा है, परंतु समाज शक्तिशाली है, उसमें युगों की शक्ति संचित है। समाज का मान्यताएँ, नैतिकता और मर्यादाओं की नींव, ठोस भूमि पर टिकी हुई है। व्यक्ति समूचे समाज से टकराने में असमर्थ है। हाँ, जब व्यक्ति पुरानी परंपराओं को विच्छिन्न कर नवीन मूल्यों की स्थापना करता है, तो उसे आंशिक सफलता आवश्य मिलती है। समाज के प्रति व्यक्ति का विद्रोह, अस्वीकार, आक्रोश, कई स्तरों पर व्यक्त हुआ है। लेकिन जब विद्रोह की आवाज प्रत्यक्षता बंद हुई तो इसकी परिणति बेकारगी, असहायपन, विवशता, अकेलेपन, वैराग्य व आंतरिक घुटन में हुई। अलगाव की स्थिति उत्पन्न हुई। यह अलगाव वैयक्तिक, पारिवारिक और सामाजिक स्तर पर हुआ है। `[१]

` पचपन खम्भे लाल दीवारें ` उपन्यास में पारिवारिक और सामाजिक स्तर पर उत्पन्न अजनबीपन की समस्या दिखाई देती है। इस उपन्यास की सुषमा अपनी आर्थिक विवशता के कारण अकेलेपन की शिकार होती है। पारिवारिक दायित्व और सामाजिक बंधन के कारण वह चाहकर भी अपने प्रेमी नील से विवाह

---

१ हिन्दी उपन्यास - समाज और व्यक्ति का द्वन्द्व - डॉ. मंजुला गुप्ता - सूर्य प्रकाशन - प्रथम संस्करण - १९८६ - पृ. १४।

नहीं कर सकती । मेरी जिंदगी खत्म हो चुकी है । मैं केवल साधन हूँ । मेरी भावना का कोई स्थान नहीं । विवाह करके परिवार को निराधार छोड देना मेरे लिए संभव नहीं । मैंने अपने को ऐसी जिंदगी के लिए ढाल लिया है । तुम चले जाओगे, तो मैं फिर अपने को उन्हीं प्राचीरों में बन्दी कर लूँगी ।' [१] उसकी यह विवशता उसमें अजनबीपन की भावना जगाती है । समाज की क्रूरतायें उसके मन में कडवाहट भर देती है । यही कडवाहट उसमें जीवन के प्रति अलगाव उत्पन्न करती है -- 'सबकुछ कहीं डूब गया था - जीवन के प्रति उत्साह, परिवार के प्रति मोह, फूलों के रंग । सुषमा अकेली थी, अपने दु:ख, अपमान और लज्जा की गहराइयों में भटकती, अति चीत्कार करती हुई ।' [२] अंतमें परिस्थितिवश सुषमा नील के विवाह प्रस्ताव को ठुकरा देती है । परंतु नील के जाने के बाद उसे अपना जीवन नीरस, अर्थहीन प्रतित होने लगता है तथा अजनबीपन का बोध उसकी समस्त चेतना को जकड लेता है - 'उसके जीवन में न जाने कहाँ कुछ ऐसी बात बिगड गयी थी, जो अब लाख बनाने पर भी न बनेगी । इतने लोगों से घिरी रहने पर भी वह अकेली रहेगी ।' [३]

'सुरंग' कहानी में भी परिवारगत अजनबीपन की समस्या दिखाई देती है । इस कहानी की अरुणा, माँ और बेबी तीनों एक दूसरे से कटे हुए व्यक्ति हैं । एक परिवार में रहते हुए भी वे एक दूसरे से अजनबी रहती हैं । अकेले बेटे की मौत के ट्रेजेडी ने माँ को डस लिया है, अरुणा के अपने अलग दु:ख हैं अत: वह दोनों अपने आप में संलिप्त रहती हैं । बेबी छोटी है, भोली है । ऐसी स्थिति में अपने आप को अकेला पाने लगती है । इसीलिए वह अपने दिल में दबी पीडा, भय, दु:ख को किसी के सामने प्रकट नहीं कर सकती । रात के अंधेरे में उसकी पीडा घनीभूत

---

१ पचपन खम्भे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - राजकमल प्रकाशन - चतुर्थ संस्करण - १९६४ - पृ. ६०

२ - वही - पृ. १०३

३ पचपन खम्भे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - राजकमल प्रकाशन - चतुर्थ संस्करण - १९६४ - पृ. १२३

हो उठती है और वह बुरी तरह सिसक-सिसक कर रोने लगती है - "बेबी अकेली है और उसे अंदर कोई बडा भारी दु:ख साल रहा है, जो रात के बीच इतने विवश हृदय विदारक और अनियंत्रित रूप में फूट पडा है। वह उस दुख को बाँट नहीं सकती, क्योंकि बेबी अपने को अकेला समझती है।"[१] कहानी के अंत में बेबी अपने डर को अरुणा के सामने प्रकट करती है। और वह दोनों भी एक-दूसरे के निकट आकर अकेलेपन से मुक्ति पाने का प्रयास करती हैं।

अजनबीपन के प्रमुख कारणों में मोहभंग भी एक महत्वपूर्ण कारण है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मोहभंग विषम परिस्थितियों में अनिवार्य है। यह मोहभंग वैयक्तिक भी हो सकता है और सामाजिक भी। "वापसी" कहानी में मोहभंग से उत्पन्न अजनबीपन की समस्या दिखाई देती है। इस कहानी के गजाधर बाबू अपनी सेवानिवृत्ति के बाद अपनी वृध्दावस्था के दिन परिवारवालों के साथ बिताने के लिए बडी आशा और उमंग के साथ अपने परिवार में चले आते हैं, परंतु वहाँ आनेपर अपने बच्चों और पत्नी का अपने प्रति बर्ताव देखकर वे हताश और निराश हो जाते हैं। तथा वे अपने को अकेला, असंगत और अव्यवस्थित महसूस करते हैं -- "किसी भी बात में हस्तक्षेप न करने के लिए, निश्चय के बाद भी उनका अस्तित्व उस वातावरण का एक भाग न बन सका। उनकी उपस्थिति उस घर में ऐसी असंगत लगने लगी थी जैसे सजी हुई बैठक में उनकी चारपाई थी।"[२] अपने इस अजनबीपन के बोध के कारण वे परिवार से वापस लौट जाते हैं।

अजनबीपन की भावना के पीछे प्रौद्योगिकी का द्रुत विकास भी कारणीभूत है। औद्योगिकरण तथा क्रांतिकारी तकनीकी ढंग के कारण आधुनिक जीवन में मशीनी सभ्यता विकसित हुई है। इस मशीनी सभ्यता का अस्तित्व पूर्णतया समय से बँधा हुआ नियमित और पूर्व निर्धारित है। इसका मनुष्य के कार्यकलापों पर निरंकुश शासन मनुष्य के अस्तित्व को समय के सेवक के रूप में

---

१ कितना बडा झूठ - उषा प्रियंवदा - राजकमल प्रकाशन - तृतीय संस्करण- १९७६ - पृ.७७।

२ मेरी प्रिय कहानियाँ - उषा प्रियंवदा - राजपाल एण्ड सन्स, प्रथम संस्करण - १९७४ - पृ.१२३।

सीमित कर देता है । और मानवीय व्यवहारों के विस्तृत दायरे को जेलखाने की सीमा में बाँध देता है, जिससे व्यक्ति को ऊब, घुटन का एहसास होने लगता है । और वह अपने जीवन को खोखला और सारहीन अनुभव करने लगता है । यह खोखलापन ही उसमें जीवन के प्रति अलगाव निर्माण करता है । 'छुट्टी का दिन' कहानी की माया इस समस्या से पीडित है । माया नौकरी के कारण अपने घर - परिवार से दूर शहर में अकेली रहती है। धोने के लिए डाले गये ब्लाऊज का रंग दूसरे कपडों पर लग जाने से उसके जीवन में छायी ऊब और एकरसता उभड जाती है -- 'एक ब्लाऊज का पीला और हरा रंग निकलकर दूसरी ब्लाऊजों और सफेद सिल्क की साडी में लग गया था । दोष अपना ही था, फिर भी न जाने क्यों उसे रोना आ गया । रेशमी ब्लाऊज के कच्चे निकल जाने पर नहीं, बल्कि अपनी जिंदगी पर, उसके खोखलेपन पर, और सारहीनता पर । किसलिए वह घर-बार छोडकर इतनी दूर आकर पडी थी, किसलिए वह सुबह से शाम तक कॉलेज में मगजपच्ची करती थी । इसलिए कि जिंदगी के दिन एक एक करके गुजरते जाए और एक दिन वह सोचे कि इस जीवन में उसने क्या पाया, तो पत्ता चले कि वह एक लंबे अनंत मरुस्थल की तरह था ।'[१]

इसके अतिरिक्त प्रियंवदाजी के 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' उपन्यास की मीनाक्षी तथा 'कोई नहीं' कहानी के नमिता के द्वारा अध्यापकीय जीवन की संकुचितता तथा विसंगति से उत्पन्न ऊब तथा गतिशून्य जीवन की समस्या का चित्रण मिलता है ।

भारतीय समाज में अजनबीपन की चर्चा भिन्न भिन्न संदर्भों में हुई है । आज भारतीय समाज और जनजीवन में उपस्थित अजनबीपन की भावना को 'सांस्कृतिक अवरोध' तथा 'अस्मिता के संकट' के रूप में देखा गया है । पूरब-पश्चिम की सांस्कृतिक टकराहट में व्यक्ति मूल्यों के स्तर पर अकेला हो गया । विदेश में रहते हुए यह अकेलापन और भी मुखर हो जाता है । इस अकेलेपन तथा

---

१ मेरी प्रिय कहानियाँ - उषा प्रियंवदा - राजपाल एण्ड सन्स,
प्रथम संस्करण - १९७४ - पृ. १२३ ।

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR

अजनबीपन की समस्या को उषा प्रियंवदाजी ने अपने उपन्यास और कहानियों में स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किया है ।

उनकी ' सागर पार का संगीत ' कहानी की देवयानी जो भारतीय युवती है, कैनेडियन युवक ऑस्कर से विवाह करती है । और विवाह के पश्चात् कनेडा में आ बस जाती है । परंतु कुछ दिनों बाद देवयानी के मन को परिवेशगत अकेलेपन की पीडा डस जाती है । अपने मनोविद् डाक्टर हुड से वह कहती है - ' मैं ऑस्कर को बहुत बहुत प्यार करती हूँ - मैं बेहद भरा भरा हूँ, फुलफिल्ड । और बेहद अकेली भी । कभी कभी तो मैं इतनी अकेली हो जाती हूँ कि ऑस्कर, उसके मित्र, सभी बडी दूर लगने लगते है, जैसे मेरे चारों ओर एक शीशे की दीवार आ खडी हुई हो ।'[१] देवयानी की यह अकेलापन इतना बढ जाता है कि वह उससे उबर नहीं पाती । अत: अंत में वह आत्महत्या करती है ।

प्रियंवदाजी की ' नींद ' कहानी भी अकेलेपन की गहराई से आतंकित भारतीय नारी की मन:स्थिति तथा उससे उबरने की छटपटाहट को अभिव्यक्त करती है -- ' मैं बहुत कम चीजों से डरती हूँ - न रोग से, न गरीबी से, न ठंड से, डरती हूँ, तो बस एक लम्बी, अँधेरी रात के अकेलेपन से । और, उससे त्राण के लिए ही इधर-उधर भटकती हूँ ।'[२] वह भी अंत में इस पीडा से मुक्ति पाने के लिए नींद गोलियाँ खाकर आत्महत्या करती है ।

इन कहानियों के अतिरिक्त ' सागर पार का संगीत ' तथा ' टूटे हुए ' कहानी में भी इस प्रकार के अजनबीपन की समस्या दिखाई देती है ।

वर्तमान युग में विदेशी प्रवास भी अजनबीपन की समस्या का कारण बन गया है । जब कोई व्यक्ति विदेश जाता है, तो वहाँ के भिन्न परिवेश और भिन्न संस्कृति में स्वयं को अजनबी पाता है । अत: वहाँ न जुड पाने से वह फिर स्वदेश

---

१ एक कोई दूसरा - उषा प्रियंवदा - राजकमल प्रकाशन - तृतीय संस्करण - - १९७६- पृ. ७० ।

२ कितना बडा झूठ - उषा प्रियंवदा - राजकमल प्रकाशन - तृतीय संस्करण - १९७६ - पृ. ९९ ।

लौटता है। परंतु वहाँ भी अपने परिवेश से उखड़ने से वह दूसरे प्रकार के अजनबीपन का शिकार बन जाता है। सुश्री प्रियंवदाजी स्वयं अमरिका में रह रही है। अत: वह इस समस्या की भुक्तभोगी है। यही कारण है कि उन्होंने अपने साहित्य में इस समस्या को यथार्थ के धरातल पर चित्रित किया है। इस संदर्भ में उन्होंने लिखा है -- `जहाँ मैं रहती हूँ, उस नगर में चार सौ तेइस भारतीय हैं। संगीत समारोह, मुशायरे, भोजन, हिन्दी फिल्में, चाय-पार्टियों में निमंत्रण मिलता है और प्राय: सम्मिलित भी होती हूँ, पर उस सबके बावजूद भी जैसे उनके जीवन की परिधि पर ही हूँ। कभी मध्य में नहीं। भारत लौटने पर भी ऐसा ही लगता है, इसीलिए शायद यह अलगाव शायद मेरे व्यक्तित्व और लेखन का अभिन्न अंग बनता जा रहा है।`[१]

उन्होंने अपने रुकोगी नहीं,... राधिका ? उपन्यास में राधिका के निजी परिवेश से उखड़ने और अजनबी होने की व्यथा को संवेदनात्मक रूप में चित्रित किया है। इस उपन्यास की राधिका अपनी शिक्षा के लिए अमरिका चली जाती है। परंतु पाश्चात्य परिवेश से स्वयं को न जोड पाने के कारण तीन वर्ष बाद स्वदेश लौटने का निर्णय लेती है, यहाँ आने पर भी वह स्वयं को `मिसफिट` और अजनबी पाती है। इस बारे में कहा गया है -- `पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध में अपने अजनबी होने के आतंक-बोध से घबराकर पूर्व में पुन: लौट आई नारी ने एक-दूसरे किस्म के अजनबीपन से साक्षात्कार किया है। यह अजनबीपन पश्चिम की अनुभूति से कहीं अधिक गहरा और सच्चा है।`[२] राधिका भी इसी समस्या से पीडित होती है। स्वदेश लौटनेपर वह अपने ही परिवेश में स्वयं को पृथक, अजनबी पाती है -- `उसे लगा कि वह इस भीड, शोर - शराब, चहल-पहल से एकदम कटी हुई है, वह अपने परिवेश का भाग नहीं रही, वह यहाँ रहते हुए भी निर्वासिता है, उसका जीवन निरुद्देश्य यात्रा है, एक लम्बी अंधकारपूर्ण सुरंग -

---

१ मेरी सृजन प्रक्रिया - उषा प्रियंवदा - ज्ञानोदय - अगस्त - १९७६ - पृ. ४३

२ आधुनिक हिन्दी उपन्यास और अजनबीपन -- विद्याशंकर राय - सरस्वती प्रकाशन - प्रथम संस्करण - १९८१ - पृ. १३५ ।

दो वर्ष पहले इस बोध ने उसे कापनी विचलित किया था, पर वहाँ तो भिन्न परिवेश था ही, एक भिन्न संस्कृति, वहाँ रहकर पार्थक्य की भावना बहुत सहज और स्वाभाविक भी, स्वदेश लौटकर स्वजनों के मध्य शायद उसके अंदर का यह हिमखंड पिघल जाय । पर ऐसा संभव नहीं लगता । नित्य प्रति के जीवन की क्रियाएँ वह मशीनी भाव से संपन्न करती आई है, यह बेचैनी, यह ऊब भरी अकुलाहट बढ़ती जाती है ।'[1] इस उपन्यास का मनीश भी, जो सात साल विदेश में रहकर लौटा है, स्वयं को अलग, कटा हुआ पाता है ।

अजनबीपन की समस्या के संदर्भ में विवेचित उपर्युक्त उपन्यास और कहानियों के अतिरिक्त प्रियंवदाजी के 'शेषयात्रा' उपन्यास तथा 'सम्बन्ध', 'प्रतिध्वनि' आदि कहानियों में भी अकेलेपन की समस्या दिखाई देती है ।

सांस्कृतिक समस्या --

'संस्कृति' समाज का विशिष्ट जीवनढंग है, जिसे मनुष्य जाति का सामाजिक जीवन भी कहा जा सकता है ।'[2] अर्थात् प्रत्येक समाज की अपनी भिन्न संस्कृति होती है, और यह संस्कृति तथा सांस्कृतिक परिवर्तन समाज तथा सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करते हैं ।

गतिशीलता संस्कृति का प्रमुख लक्षण है । संस्कृति कभी सदैव एकसी नहीं रहती, उसमें सदैव परिवर्तन होता रहता है । आज पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के परिणामस्वरूप भारतीय संस्कृति और सभ्यता में भी परिवर्तन हो रहा है । पाश्चात्य देशों की भौतिकवादी सभ्यता ने भारतीय जनमानस को आकर्षित किया है, जिससे भारतीय समाज में पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण की प्रवृत्ति पनप रही है । फलस्वरूप आज भारतीय समाज में सांस्कृतिक समस्या निर्माण हो गई है ।

---

१ रुकोगी नहीं,.. राधिका ? उषा प्रियंवदा - अक्षर प्रकाशन, पाँचवा - संस्करण - १९८० - पृ. १०५ ।

२ स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि - डॉ. स्वर्णलता विवेक - पब्लिकेशन हाउस, प्र. सं. १९७५- पृ. १९१ ।

हमारे समाज के अभिजात्य वर्ग में पाश्चात्य सभ्यता को अपनाने की प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है । यह वर्ग अपने देह पर का तथा घर की प्रत्येक चीज के आयातित होने में, पाश्चात्यसभ्यता के सभी सही गलत बाहरी तौर-तरीकों को अपनाने में गर्व का अनुभव करता है । उषा प्रियंवदाजी ने इनकी इस प्रवृत्ति को अपने कथात्मक साहित्य में जगह-जगह पर व्यंजनापूर्ण शैली में चित्रित किया है । उनके 'रुकोगी नहीं,.. राधिका ?' उपन्यास में विदेशी वस्तुओं के प्रति भारतीयों में होनेवाले आकर्षण का जिक्र मिलता है । राधिका की बालसखी रमा को इस बात का बडा रंज है कि राधिका विदेश से केवल कुछ किताबें, रंग और कुछ तस्वीरें ही लेकर आयी है... न छाते, न घडियाँ, न लिपस्टिकें न ट्रांजिस्टर ।'[१]

अभिजात्य वर्ग में विदेश यात्रा करना, विदेश में वास्तव्य करना तथा अंग्रेजी बोलना आदि बाते संपन्नता और प्रतिष्ठा का द्योतक मानी जाती है । उषाजी के 'एक कोई दूसरा' कहानी में नायिका निलांजना के भाभी को निलांजना के लिए 'वर' के रूप में विजय इसलिए योग्य लगता है, कि वह विदेश में रहा है और उसे अंग्रेजी अच्छी आती है । उसकी योग्यता का जिक्र करते हुए वह निलांजना से कहती है --' वह इतने साल विदेश में रह रहे हैं, बडे स्मार्ट हैं, तुमने तो स्वयं देखा है, कि कितनी अच्छी अंग्रेजी बोलते हैं ।'[२]

'रुकोगी नहीं,.. राधिका ?' उपन्यास में भी ऐसी स्थिति दिखाई देती है । राधिका की अस्थिरमन भाभी जब राधिका के घर आने पर उसका उत्साह से स्वागत करती है, तब राधिका को आश्चर्य होता है । परंतु बाद में वह इस स्वागत के पीछे होनेवाला कारण जान जाती है --' दो-एक बार भाभी जब उसे क्लब वाले गयी और अमरीका से लौटी हुई ननद को गर्व से मित्रों से मिलाया, तो

---

१ रुकोगी नहीं,... राधिका ?' - उषा प्रियंवदा - अक्षर प्रकाशन - प्रथम संस्करण - - पृ.७६ ।

२ एक कोई दूसरा - उषा प्रियंवदा - अक्षर प्रकाशन - द्वितीय संस्करण - १९८६ - पृ.१० ।

राधिका समझ गयी, कि भाभी के लिए वह उसी संपन्न स्थिति का द्योतक है, जैसे बड दा के लिए पोर्च में खडी पॉटिफ्स्टयाक गाडी ।'[1] इस उपन्यास का एक अन्य पात्र प्रवीण जो उत्तर भारत का रहनेवाला है । उसे हिन्दी बोलने की आदत के छूट जाने का तथा अपने बच्चों को अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य किसी भारतीय भाषा के नहीं आने का मलाल नहीं, बल्कि गर्व है ।'[2]

खान-पान से लेकर उठते-बैठने तौर-तरीकों में पाश्चात्यों का अनुकरण अब हमारे समाज में अपनाया जाने लगा है । पाश्चात्य देशों में मद्यपान करना कोई बूरी बात नहीं मानी जाती । क्योंकि वहाँ का भौगोलिक पर्यावरण ही इसकी अनुकूलता सिध्द करता है । पाश्चात्यों के देखा देखी आज भारतीय समाज भी शराब की लत में डूबता जा रहा है, जब कि यहाँ के वातावरण में अत्याधिक मद्यपान सेहत के लिए हानीकारक है । फिर भी अब शराब पीना एक शान-शौकत की बात मानी जाने लगी है । सुश्री प्रियंवदाजी के साहित्य में स्थान - स्थान पर मद्यपान तथा खान-पान में आये परिवर्तन का उल्लेख मिलता है ।

'प्रतिध्वनि' कहानी के श्यामल को अपने पत्नी के शराब पीने की बात का गुस्सा है -'पश्चिम में रहकर बस यह बात तुमने अच्छी सीखी है । नहीं तो एक सोबर और एक नशेवाले में क्या कम्युनिकेशन हो सकता है ।'[3]

'रुकोगी नहीं,.. राधिका ?' उपन्यास में राधिका के बडे भाई विनय के विदेश यात्रा कर आने पर शराब पीने की आदत उल्लेख मिलता है -- 'बड दा विदेश यात्रा के बाद से रोज शाम स्कॉच पीने लगे थे ।'[4] इस उपन्यास की एक अन्य पात्र क्रिस यानी कृष्णा को तो अपने अत्याधिक मद्यपान करने,की

---

१ रुकोगी नहीं,... राधिका ? उषा प्रियंवदा - अक्षर प्रकाशन - पाँचवा संस्करण - १९८० - पृ.१२१ ।

२ - वही - पृ.९६ ।

३ कितना बडा झूठ - उषा प्रियंवदा - राजकमल प्रकाशन,तृतीय सं.१९७६- पृ.३८

४ रुकोगी नहीं,.. राधिका ? उषा प्रियंवदा - अक्षर प्रकाशन - पाँचव संस्करण - १९८० - पृ.४९ ।

आदत पर गर्व है । मनीश द्वारा आयोजित डिनर-पार्टी में एक युवक और उसके बीच चली बातचीत से यह बात स्पष्ट होती है ... 'तो प्रविन के बॉस ने मुझसे पूछा क्या सोडे के साथ, मैंने कहा कि नहीं, केवल राई, थोडी-सी बर्फ के साथ । तो प्रविन के बॉस ने कहा प्रविन तुम्हारी बीवी इतनी जबर्दस्त ड्रिंकर है, यह मुझे मालूम नहीं था, अब तो मुझे तुम्हारी तनख्वाह बढानी पडेगी ।'[1]

वर्तमान में पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से कुछ उच्चवर्गीय लोग मादक द्रव्यों का सेवन भी कर रहे हैं । उषाजी के 'ट्रिप' कहानी की नायिका अपने पति के साथ हशीश के ट्रिपका एंजॉय करती नजर आती है -- 'जब उसकी बारी आती है, तो वह भी हाथ बढाकर पाइप ले लेती है और दो-एक गहरे कश लेकर पाइप बायीं ओर बैठे पति को दे देती ।'[2]

पाश्चात्य सभ्यता में पले हुए अभिजात्य लोग वोमन, वाईन और वेल्थ में ही अपने को गर्क किये रहते हैं इसलिए उनके बाह्य और आंतरिक रूप में भिन्नता होती है । 'रुकोगी नहीं.. राधिका ?' उपन्यास में इस वर्ग के इस दोहरेपन का उल्लेख मिलता है । इस उपन्यास की जब मनीश द्वारा आयोजित डिनर पार्टी में सम्मिलित होती है, तब वहाँ उपस्थित भारतीयों को देखते हुए वह सोचने लगती है -- 'क्या मनीश, प्रवीण, क्रिस और वह स्वयं वह किसी भी प्रकार से अपने देश का प्रतिनिधित्व करते थे ? राधिका को लगा कि जैसे वे पुतले हैं एक विशेष प्रकार से आचरण करने के आदी हो गये हैं । चेहरे पर सोफिस्टिकेशन का एक मुखौटा पहने, जीवन से ऊबे हुए, असंतुष्ट, एक बेचैनी मन में समाये हुए जो कि न जाने कहाँ-कहाँ ले जाती है, कारिन की बाहों में, राई के गिलास में....'[3] इन लोगों के व्यक्तित्व का यह दोहरापन उनमें पीडा, कुंठाएँ और बेचैनी भर देता है । मनीश जैसा सफल व्यक्ति, जिसने रम, रमा, रमणी सब कुछ पाया है, फिर भी संतुष्ट नहीं है । यह कहता है -- 'सफलता

---

1 रुकोगी नहीं,.. राधिका ? - उषा प्रियवंदा, अक्षर प्रकाशन, पाँचवा संस्करण - १९८० - पृ.९०

२ कितना बडा झूठ - उषा प्रियवंदा - राजकमल प्रकाशन, तृतीय सं., १९७८- पृ.५३

3 रुकोगी नहीं राधिका ?' उषा प्रियवंदा, अक्षर प्रकाशन - पाँचवा संस्करण - १९८० - पृ.९२ -

है, धन है, पर चैन नहीं'[1] स्वयं राधिका भी अपने जीवन की अर्थहीनता से पीडित है। आज व्यक्ति में दिखनेवाले इस पीडा, निराशा और दिशाहीनता के मूल में सांस्कृतिक परिवर्तन की समस्या ही है। डॉ.हेमेन्द्रकुमार पानेरी के अनुसार 'विगत डेढ, दो शतकों में बाह्य आंतरिक संघर्ष के फलस्वरूप संस्कृति में संकट के क्षण उपस्थित हुए हैं। आज सर्वत्र कुंठा, निराशा, और दिशाहीनता का वातावरण व्याप्त है। सदियों के संघर्ष, मूल्यों के इस ह्रास और पल-पल परिवर्तन की स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को दिग्भ्रमित अनुभव करता है।'[2]

वर्तमान युग में शिक्षा, व्यवसाय आदि कारणों से कई लोगों को विदेश में जाना पडता है। कुछ साल वहाँ रहकर वापस स्वदेश आने पर उन्हें 'रिवर्स कल्चरल शॉक' की समस्या से टकराना पडता है। 'रुकोगी नहीं,.... राधिका ?' उपन्यास में प्रियंवदाजी ने इस समस्या को अत्यंत प्रभावी ढंग से चित्रित किया है। इस उपन्यास का मनीश इस 'रिवर्स कल्चरल शॉक' अत्यंत मार्मिक विश्लेषण करता है --'जब हम अपना देश छोडकर बाहर जाते हैं, तो पहले छ: महीने हम एक कल्चरल शॉक के दौरान बिताते हैं, जब कि हर कदम पर हमें अपना देश, अपनी संस्कृति ऊँची दिखाई देती है। फिर हम उस देश में रहने के आदी हो जाते हैं। दो साल, ढाई साल उस नये देश में रहकर उसके रीति-रिवाज के आदी होकर हम अपने देश में वापस आते हैं, तो हमें एक धक्का दुबारा लगता है, रिवर्स कल्चरल शॉक।' इस उपन्यास के राधिका और मनीश दोनों भी इस समस्या से आक्रांत हैं। राधिका स्वदेश लौटने पर भी स्वयं को अलग, कटा हुआ पाती है - 'उसे लगा कि वह इस भीड, शोर-शराबा, चहल-पहल से एकदम कटी हुई है, वह अपने परिवेश का भाग नहीं रही, वह यहाँ रहते हुए भी निर्वासिता है, उसका जीवन निरुद्देश्य यात्रा है, एक लंबी अंधकारपूर्ण सुरंग - दो वर्ष पहले इस बोध ने उसे कापनी विचलित किया था, पर वहाँ तो भिन्न परिवेश था ही, एक भिन्न संस्कृति, वहाँ रहकर पार्थक्य की भावना सहज और

१ रुकोगी नहीं,.. राधिका ? - उषा प्रियंवदा - अक्षर प्रकाशन - पाँचवा संस्करण - १९६० - पृ.९७।

२ स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास - मूल्य संक्रमण - डॉ.हेमेन्द्र पानेरी - संघी प्रकाशन - प्रथम संस्करण - १९७४ - पृ.१३४।

स्वाभाविक थी, स्वदेश लौटकर स्वजनों के मध्य शायद उसके अंदर का यह हिमखंड पिघल जाये । पर ऐसा संभव नहीं लगता ।"[1] मनीश भी अपने को ऐसे ही अलग पाता है ।

पाश्चात्य सभ्यता में स्त्री-पुरुष संबंधों में उन्मुक्तता रही है । वहाँ स्त्री-पुरुष संबंधों को एक सहज मैत्री रूप में स्वीकारा जाता है । वहाँ स्वच्छन्द प्रेम को बुरा नहीं माना जाता । आज भारतीय समाज में भी स्वच्छन्द प्रेम की प्रवृत्ति पनप रही है । जिससे भारतीय संस्कृति के परंपरागत मूल्य पातिव्रत्य, सतीत्व आदि नष्ट होने लगे हैं । 'प्रियंवदाजी के 'ट्रिप' तथा 'प्रतिध्वनि' कहानी में स्वच्छन्द प्रेम तथा यौन स्वच्छन्दता दिखाई देती है । पाश्चात्य सभ्यता ने स्त्री-पुरुषों को जहाँ साथी चुनने की स्वतंत्रता दी है, वहाँ उससे मुक्त होने की भी स्वतंत्रता दी है । यही कारण है, कि पाश्चात्य सभ्यता में तलाक का प्रमाण अत्याधिक रहा है । भारतीय समाज में भी स्त्री-पुरुष संबंधों में स्वच्छन्दता आने से तलाक एक मूल्य रूप में विकसित हो रहा है । 'शेषयात्रा' उपन्यास में तलाक की समस्या दिखाई देती है । इस उपन्यास का प्रणव बिना किसी ठोस कारण, केवल अपनी अस्थिर मनोवृत्ति और स्वच्छन्दता के कारण पत्नी को तलाक देता है । 'प्रतिध्वनि' कहानी की वसु भी वैवाहिक बंधन से मुक्त होकर स्वच्छन्द प्रेम का उपभोग करने के लिए पति श्यामल से संबंध विच्छेद कर लेती है --"डाईवोर्स का कारण क्या था, कि वह श्यामल को छोडकर चली गई थी - श्यामल के नीचे काम करनेवाले एक पोस्ट-डाक्टोरल फेलो के साथ ।"[2] पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से आज भारतीय समाज में तलाक का प्रमाण बढ रहा है, जो हमारे संस्कृति के लिए हानीकारक है । वर्तमान जीवन में दाम्पत्यगत जीवन के छोटे-छोटे कारणों के लिए भी तलाक लिया जा रहा है । हमारे संस्कृति में विवाह और दाम्पत्य जीवन को धर्म से सम्बध्द माना जाता है, अत: उसमें कानून का हस्तक्षेप निश्चय ही सांस्कृतिक

---

१ रुकोगी नहीं,.... राधिका ? उषा प्रियंवदा - अक्षर प्रकाशन, पाँचवा संस्करण - १९६० - पृ. १०५ ।

२ कितना बडा झूठ - उषा प्रियंवदा - राजकमल प्रकाशन - तृतीय संस्करण - - १९७६ - पृ. २७ ।

विघटन में सहायक सिध्द होगा । ' तलाक ' हमारे संस्कृति के खिलाफ है । इसलिए यदि हमें पाश्चात्य देशों में व्याप्त मानसिक तनाव को निमंत्रण देना है, तो स्त्री-पुरुष के बीच के रिश्तों में कानून का हस्तक्षेप बढ़ने देने में कोई आपत्ति नहीं है । लेकिन यदि हमें अपनी संस्कृति की मूल भावना की रक्षा करनी है, सामाजिक विकृतियों को बढ़ाने से रोकना है, तो हमें सामाजिक धरातल पर मानवीय संबंधों को ध्यान में रखकर स्त्री-पुरुष संबंधों के मध्य से कानून का हस्तक्षेप कम करना होगा और आपसी सूझबूझ और सामंजस्य के मन की भाषा से समस्याओं का अध्ययन करके रिश्तों के समीकरण खोजने होंगे ।'[1]

पाश्चात्य सभ्यता के चकाचौंध ने हमारे समाज को इसप्रकार आकर्षित किया है, कि आज भारतीय लोगों के सांस्कृतिकरण की जगह पश्चिमीकरण (वेस्टरनाइजेशन) हो रहा है । परंतु इस पाश्चात्य संस्कृति के आत्मग्रहण की प्रक्रिया से एक और नयी समस्या उत्पन्न हो गयी है । वह यह है, कि हम अपने सांस्कृतिक मूल्यों की अवहेलना करके भी, पाश्चात्य संस्कृति को आत्मसात नहीं कर पाते अत: मूल्यों के स्तर पर अपने को अकेला पाते हैं । इस संदर्भ में युवा उद्यमी अशोक कहते हैं -- ' भौतिक संस्कृति के हिसाब से हम चाहे जितना आगे बढ़ गये हो, मानसिक रूप से अपेक्षाकृत पीछे हैं, यह सांस्कृतिक पिछड़ाव हमारे समाज में है । एक ओर तो हम प्रगतिशील समाज की बातें करते हैं, दूसरी ओर नये मूल्यों को अपनाने से कतराते हैं ।'[2]

हमारे समाज के इस सांस्कृतिक समस्या को हल करने के लिए आज भारतीय तथा पाश्चात्य दोनों संस्कृतियों के स्वस्थ तत्वों के समन्वय की आवश्यकता है । हम न तो द्रुत गति से बढ़ते हुए - ' भौतिक विकास से असंपृक्त रह सकते हैं, न ही पूर्णत: भौतिकवादी सभ्यता के शिखर पर पहुँचे अन्य समाजों (यूरोप,

---

१ कानून यानी रिश्तों का खून - आशुतोष सिन्हा - सारिका - अप्रैल-८५ - द्वितीय पक्ष - पृ. २०.

२ सारिका - पृ. २१ ।

अमरिका आदि) की भाँति अपनी मानसिक शांति ढूँढने के लिए हरेकृष्ण, हरेराम के सम्वेत कीर्तन करते घूमना चाहते हैं । .... और न ही हिप्पियों की संस्कृति को जन्म देना चाहते हैं, जो मादक द्रव्यों का उपयोग करते हैं, और स्वच्छन्द प्रेम में विश्वास करते हैं ।'[1]

विवाह की समस्या --

विवाह समाज की एक अनिवार्यता है, समस्या नहीं, किंतु आज की विषम परिस्थितियों ने इस अनिवार्यता को भी एक समस्या का रूप दिया है । विवाह समाज के यौन स्वेच्छाचार पर नियंत्रण डालता है । विश्व के सभी संस्कृतियों में विवाह की प्रथा प्रचलित है । भारतीय समाज में विवाह को धर्म से संयुक्त किया जाने के कारण भारतीय समाज में विवाह के प्रति आस्था की भावना रही है ।

परंतु आज की परिवर्तित दृष्टियों के कारण विवाह की परंपरागत मान्यताओं में काफी परिवर्तन हुआ है । डॉ. भटनागर के अनुसार --' विवाह का महान आदर्श आज समाज में लुप्त हो गया है । दाम्पत्य जीवन का सुख दुर्लभ बन गया है । वैवाहिक असंगतियाँ आज घर घर में विद्यमान हैं, जिन्होंने स्त्री-पुरुष संबंधों को विकृत तो किया ही है, समाज की शांति भी भंग कर रखी है ।'[2] ऐसी स्थिति में विवाह संबंधी विचारों में परिवर्तन होना स्वाभाविक था । अब विवाह के प्रति परंपरागत दृष्टिकोण निरर्थक हो गया है । 'शोधयात्रा' उपन्यास का प्रणव परंपरागत विवाह के बारे में कहता है --' ऐसी शादियाँ हमेशा रिस्क होती हैं, एक छोटी-सी मुलाकात, सिर्फ चेहरा देखकर पसन्द कर

---

१ धर्मयुग - २२ नवम्बर १९७० - अंक पृ. १६ ।

२ समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचंद - डॉ. महेन्द्र भटनागर - ज्ञानभारती - प्रकाशन - प्रथम संस्करण - १९८२ - पृ. १४४ ।

लेना, आगे स्वभाव कैसा निकालेगा, पटेगी या नहीं, यह सब कहना बडा मुश्किल होता है ।`[1]

वैवाहिक प्रश्न को जटिल बनाने में एक ओर परिवर्तित सामाजिक परिस्थितियाँ हैं, तो दूसरी ओर सामाजिक कुप्रथाओं ने इनको जटिल बनाया है । विवाह के अंतर्गत दहेज की प्रथा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समस्या है । ` दहेज प्रथा एक सामाजिक रोग है, जो शनैः शनैः समाज को निष्प्राण सा बना देता है । इस सामाजिक बुराई ने जितना सामाजिक अहित किया है, शायद अन्य बुराई ने किया हो । दहेज-प्रथा से कई युवतियों का जीवन नारकीय हो जाता है, कई परिवार नष्ट हो जाते हैं और कई समाज कलंकित हो जाते हैं ।` अर्थात दहेज-प्रथा से ही समाज में अनेक समस्यायें निर्माण होती हैं । भारतीय समाज में इस कुप्रथा का प्रचलन प्राचीन काल से रहा है । आज के प्रगतिशील युग में भी इस प्रथा का अंत नहीं हो पाया है, बल्कि वर्तमान युग की अर्थ प्रधान व्यवस्था के कारण इसे और अधिक बढावा मिल रहा है । इसी तथ्य के कारण प्रियंवदाजी के साहित्य में भी इस समस्या का चित्रण हुआ है । उनके ` पचपन खम्भे लाल दीवारें ` उपन्यास में दहेज-प्रथा का दुष्परिणाम को दिखाई देता है । उपन्यास की नायिका सुषमा के माता पिता आर्थिक विवशता के कारण सुषमा के विवाह के लिए दहेज की सामग्री जुटा नहीं सकते । अतः उनकी कन्या सुषमा को आजन्म अविवाहित रहना पडता है । आर्थिक दृष्टि से संपन्न तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति भी अपने पुत्रों के विवाह में दहेज की कामना करते हैं । इस उपन्यास के वकील साहब अपने पुत्र का विवाह ऊँचे घर में करना चाहते हैं, ताकी अधिक से अधिक दहेज मिले --

` वकील साहब की बहुत प्रतिष्ठा थी । वह नारायण की शादी बडे ऊँचे घर में करना चाहते थे । उनकी पत्नी ने सुषमा के लिए बहुत हठ किया, पर वकील साहबने नारायण की शादी कहीं और तय कर दी । ... सुना , उस लडकी के

---

१ शेषयात्रा - उषा प्रियंवदा - राजकमल प्रकाशन - प्र.सं.-१९८४ -पृ.९३

पिता सिविल सर्जन थे और दहेज से घर आँगन भर गया था ।'[1]

आज का उच्चशिक्षित युवक भी विवाह में दहेज की आकांक्षा रखता है । अपनी भावी पत्नी से रूप गुण की अपेक्षा विवाह में पाये जानेवाले धन की ओर ही उसका ध्यान अधिक रहता है । 'स्वीकृति' कहानी में इस बात की झलक दिखाई देती है -- 'रूप-रंग साधारण होने के कारण विवाह में कितनी अड़चनें पड़ी थी, यह बात कौन कैसे बताती । सत्य से शादी भी कितनी हड़बड़-खड़बड़ में हुई थी । सत्य पोस्ट डाक्टोरल फैलो होकर विदेश जा रहा था । पत्नी पढ़ी-लिखी हो, और दो टिकटों का प्रबंध दहेज में मिले धन से हो सके, उसकी केवल यही दो माँगे थी[2]।'

आज समाज में दहेज की कुप्रथा का प्रचलन बढ़ रहा है । जिसके कारण विवाह का धार्मिक महत्व कम होकर उसे एक सौदे का रूप प्राप्त हुआ है । इस प्रथा के संदर्भ में डॉ. भटनागर लिखते है - आज हिन्दू समाज में विवाह के लिए सर्वप्रथम धन को देखा जाता है । हिंदू समाज की वैवाहिक समस्या के पीछे आर्थिक अभाव नहीं वरन् गिरी हुई नैतिकता है, जिस समाज में विवाह का आधार धन है, वहाँ आर्थिक प्रश्न कोई महत्व नहीं रखता । अमिर-गरीब सभी परिवारों में इस गिरी हुई नैतिकता के दर्शन होते है, जो वैवाहिक असंगतियों को जन्म देती है । यदि गरीबी मिटा दी जाये तो भी दहेज प्रथा उस समय तक नहीं मिट सकती जब तक समाज का स्तर ऊँचा नहीं उठता ।'

भारतीय परंपरा में दहेज-प्रथा के समान ही अनमेल विवाह की प्रथा रूढ़ रही है । प्राचीन काल में धनाभाव तथा अन्य कई कारणों से लड़कियों का अनमेल विवाह किया जाता था। परंतु आज की पढ़ी-लिखी नारी भी कभी कभी किसी के व्यक्तित्व से अत्याधिक आकर्षित होने पर स्वेच्छा से अनमेल विवाह करती है ।

---

१ पचपन खम्भे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - राजकमल प्रकाशन -चतुर्थ संस्करण - - १९७४ - पृ. ३८

२ कितना बड़ा झूठ - उषा प्रियंवदा - अक्षर प्रकाशन - तृतीय संस्करण - - १९७६ - पृ. ८६ ।

३ समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचंद - डॉ. महेन्द्र भटनागर - ज्ञानभारती प्रकाशन - प्रथम संस्करण - १९८२ - पृ. १४८ ।

प्रियंवदाजी के 'रुकोगी नहीं,...राधिका ?' उपन्यास में इसप्रकार का अनमेल विवाह दिखाई देता है। इस उपन्यास की विद्या, जो एक अध्यापिका है, अपने से आयु में कम-से-कम बीस वर्षों से बड़े राधिका के विधुर पिता से अपनी इच्छा से विवाह करती है। यह विवाह परंपरागत रूप का अनमेल विवाह तो नहीं हो सकता, परंतु है तो अनमेल विवाह ही। परंतु यह विवाह सफल नहीं हो पाता। इस विवाह की अन्तिम परिणति विद्या के नींद की गोलियाँ खाकर आत्महत्या करने में होती है।

हमारे समाज में अनमेल विवाह के भाँति बाल-विवाह ,दोहाजू विवाह आदि की कुरीतियाँ भी रूढ थीं। परंतु आधुनिक शिक्षाप्रसार के द्वारा आज यह प्रथायें प्राय: नष्ट हो चुकी हैं। आज पुन:विवाह को भी समाज में मान्यता प्राप्त होने से विधवा - विवाह की समस्या भी हल हो गई है। आज समाज में पुन: विवाह हो रहे हैं, परंतु फिर भी कुछ परंपरागत विचारों के व्यक्ति इस संदर्भ में अनुदार रहते हैं। 'रुकोगी नहीं,... राधिका ?' उपन्यास का अक्षय जो पढा-लिखा होने के बावजूद भी परंपरागत विचारों का युवक है, अत: उसके मन में पुन: विवाह के प्रति उदारता नहीं है ... 'विद्या तो अक्षय के विचारों को अच्छी तरह जानती है। वह और अंजली एक तलाक पायी हुई लडकी से अक्षय का विवाह करवाना चाहती थीं, पर अक्षय ने स्पष्ट कह दिया था, कि ठीक है, लडकी परिस्थितियों का शिकार हो गई उसे सहानुभूति है, पर वह दूसरे का उच्छिष्ट नहीं स्वीकारेगा।'[1]

'शेषयात्रा' उपन्यास की अनुका भी परंपरागत भारतीय संस्कारों की होने के कारण पुन:विवाह को लेकर उसके मन में विस्मय की भावना रहती है। जब वह नीरजा के दूसरे विवाह की बात सुनती है तो सोचने लगती है --'नीरजा को कैसा लगता होगा ? पहले एक पति - फिर दूसरा पति। पहले एक आदमी के

---

1 रुकोगी नहीं,... राधिका ?' - उषा प्रियंवदा- अक्षर प्रकाशन - पाँचवा संस्करण - १९८० - पृ.५८।

साथ, फिर दूसरे आदमी के साथ । क्या पहले आदमी की याद नहीं आती होगी ?'[1] यही अनु कालांतर से जब अपने पति द्वारा त्याग दी जाती है, तब वह आत्मनिर्भर बन कर, दिपांकर से पुन:र्विवाह करती है । यहाँ लेखिका ने अनु के द्वारा परंपरागत विचारों में परिस्थितिनुरूप परिवर्तन दिखाकर पुन:र्विवाह की सार्थकता को रेखांकित किया है ।

वर्तमान समय की परिवर्तित परिस्थितियों के कारण विवाह संबंधी परंपरागत दृष्टिकोण अब बिलकुल बदल गया है । पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से विवाह संबंधी आस्थायें टूट रही है और उसे एक निरर्थक बंधन माना जा रहा है । 'झूठा दर्पण' कहानी की अमृता को भी विवाह में आस्था नहीं है । वह कहती है -- 'ऐसे संबंधो पर मेरी आस्था नहीं रही मीरा । विवाह बहुत कुछ माँगता है मुझमें न कोई चाव बचा है, न अरमान । ऐसी ही रहती आयी हूँ - ऐसे ही रहूँगी ।'[2] 'प्रतिध्वनि' कहानी में तो विवाह के प्रति खुला विद्रोह दिखाई देता है । इस कहानी की वसू तलाक प्राप्त करने के पश्चात एक मुक्ति के अहसास से कहती है -- 'एक मोर्निंग लेस - सी रस्म ने हमें बाँध दिया था ।'[3] आज विवाह के प्रति दिखाई देनेवाले विद्रोह से विवाह की समस्या गंभीर हो गयी है । क्योंकि विवाह परिवारों का सृजन करता है और परिवार समाज की महत्वपूर्ण संस्था है । इस दृष्टि से अगर विवाह की विशृंखलता से परिवार में असंगतियाँ उत्पन्न होगी, तो सम्पूर्ण समाज में विकृतियाँ निर्माण होगी । इसलिए आज विवाह समस्या का हल करने के लिए नये पुराने उचित मूल्यों को अपनाकर समाज के लिए विधायक सिध्द होनेवाली वैवाहिक मान्यता को दृढ़ करना चाहिए ।

---

१ शेषयात्रा - उषा प्रियंवदा - राजकमल प्रकाशन - प्र.सं.-१९८० - पृ.३८ ।

२ एक कोई दूसरा - उषा प्रियंवदा - अक्षर प्रकाशन - द्वितीय संस्करण - १९८६ - पृ.४०

३ कितना बड़ा झूठ - उषा प्रियंवदा - राजकमल प्रकाशन - तृतीय संस्करण - पृ.२७ ।

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

बेरोजगारी की समस्या --

आधुनिक युग में शिक्षित बेरोजगारी की समस्या एक गंभीर सामाजिक समस्या बन गयी है। आधुनिक युग की सजग लेखिका होने के नाते सुश्री उषा प्रियंवदाजी ने जाने-अनजाने में इस समस्या को भी छू लिया है।

औद्योगिकरण तथा बढ़ती जनसंख्या के कारण आज भारतीय समाज में शिक्षित बेरोजगारी में वृद्धि हो गई है। अब व्यक्ति के लिए नौकरी पाना अत्यंत दुष्कर कार्य बन गया है। नौकरी प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को काफी कठिनाईयों का सामना करना पडता है, भटकना पडता है। 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' उपन्यास की सुषमा को भी इस समस्या से टकराना पडता है - 'नौकरी के लिए उसे कितना भटकना पडा और अब इस नौकरी को पाकर उसे लगा कि तूफान से बचकर उसकी जीवन नौका एक शांत बंदरगाह पर आ पहुँची है।'[१]

'जिंदगी और गुलाब का फूल' कहानी में भी बेरोजगारी की समस्या दिखाई देती है। इस कहानी का सुबोध किसी कारणवश अपनी नौकरी का इस्तिफा देता है, परंतु दुसरी नौकरी न मिलने के कारण उसका जीवन नैराश्य से भर जाता है --' मैं जिंदगी में फेलियर हूँ, कम्पलिट फेलियर। कुछ नहीं कर सका। जैसे मेरी जिंदगी में अब फुलस्टाप लग गया है। अब ऐसे ही रहूँगा।... प्यार से बडी एक और आग होती है, भूख की। वह आग धीरे-धीरे सब कुछ लील लेती है -'[२]

काफी बुध्दिमान व्यक्तियों को भी नौकरी के लिए मुसिबतोंसे टकराना पडता है। 'पिघलती हुई बर्फ' कहानी की छवी बुध्दिमान होने के बावजूद भी उसकी अध्यापिका बनाने के लिए प्रो. सागर को विरोध सहना पडता है -' छवी

---

१ पचपन खम्भे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - राजकमल प्रकाशन - चतुर्थ संस्करण - १९६४ - पृ. ३५

२ मेरी प्रिय कहानियाँ - उषा प्रियंवदा -राजपाल एण्ड सन्स - प्रथम संस्करण - १९७४ - पृ. १३१ ।

क्लास में प्रथम आयी थी, उसकी नियुक्ति कराने में प्रोफेसर सागर को बड़ा विरोध सहना पड़ा । बड़े-बड़े चर्चे हुए ।' [१]

बेरोजगारी का एक पक्ष यह भी है, कि उचित व्यक्ति को समुचित रोजगार नहीं मिलता है । किसी पद के लिए प्रत्याशी की योग्यता, शिक्षा और प्रतिभा को न देखकर सिफारिश की शक्ति को देखा जाता है । कदाचित इससे पहले इस देश में योग्यता, शिक्षा और प्रतिभा को ऐसी दारुण अवमानता कभी नहीं हुई थी । अवसर की समानता का मूलाधिकार संविधान की पोथियों में कैद होकर रह गया है । इन स्थितियों ने युवा मन में एक गहरी निराशा और आक्रोश को जन्म दिया ।

जब अपने देश में वह कुछ प्राप्त नहीं कर पाता तो वह विदेश की ओर आकर्षित होता है । जहाँ उसे अपनी प्रतिभा तथा रचनात्मक संभावनाओं को विकसित करने की आशा दिखाई देती है । 'संबंध ' कहानी में इस बात का उल्लेख मिलता है । इस कहानी की श्यामला का भाई प्रकाश, इसी कारण ही विदेश में श्यामला के पास जाना चाहता है --' प्रकाश का भी एक खत बम्बई से आया, क्षुब्ध ,उदास,आग्रह भरा ।' यहाँ क्रियेटिव पर्सन के लिए कोई आउटलेट नहीं है, वहाँ तो कई संभावनाएँ हैं, टेलीविजन ,फिल्म मेकिंग....' [२]

' रुकोगी नहीं,.. राधिका ? ' उपन्यास में भी ऐसी समस्या का जिक्र मिलता है । इस उपन्यास का एक पात्र दिवाकर तीन साल कापनी मेहनत कर मैकगिल युनिवर्सिटी से फिजिक्स में डाक्टरेट लेकर भारत लौटा है । परंतु यहाँ उसका कॉलेज उसे ऊँचापद देने के बजाय सालाना तरक्की भी नहीं दे पाता । इसीलिए उसके मन में देश तथा अपनी स्थिति के प्रति एक असंतोष-सा रहता है । अत: वह विदेश में जाकर बसना चाहता है । परंतु उसकी पत्नी उसे मना कर देती है । वह राधिका से कहता है --' मेरी बीवी कहती है कि हमें अपने देश के लिए त्याग करना चाहिए ।

---

१ एक कोई दूसरा - उषा प्रियंवदा - अक्षर प्रकाशन - द्वितीयसंस्करण -१९६६ - पृ. ६७

२ कितना बड़ा झूठ - उषा प्रियंवदा - राजकमल प्रकाशन,तृतीय संस्करण- १९७६ - पृ. १६ ।

हमें अपने देश में ही रहना चाहिए । अपने बच्चों के भविष्य को देखना चाहिए । मेरा कनेडियन प्रोफेसर मुझे कई चिट्ठियाँ लिख चुका है, पर मेरी बीवी कहती है, मुझे यहीं रहना चाहिए । ... ` पर मैं पूछता हूँ कि मेरे देश में मेरे लिए क्या है ? मेरे कॉलेज में मेरे आगे के काम लायक लैब नहीं है । मेरे बच्चों को अच्छे स्कूल में दाखिला नहीं मिल रहा है ...`[१]

कभी-कभी शिक्षा के लिए विदेश में गये लोगों को व्यक्ति वहाँ के परिवेश में ऊब जानेपर भी भारत में मनचाही नौकरी न मिलने से मजबूरीवश विदेश में रहना पडता है । ` मछलियाँ ` कहानी का नटराजन पी.एच.डी.करने के लिए विदेश जाता है ... ` छः साल से वह विदेश में रहते रहते ऊब गया है, पर भारत में पसंद की नौकरी न मिलने से यहीं कुछ वर्ष और रहना होगा ।`[२]

परंतु विदेश में भी नौकरी के संदर्भ में कई समस्यायें हैं । जिसका जिक्र ऊषाजी के ` शेषयात्रा ` उपन्यास में मिलता है । वहाँ पर भी नौकरी प्राप्त करना आसान बात नहीं है । इस उपन्यास का आलोक इस बात को भली भाँति जानता है, इसीलिए वह कहता है --` अब तो नीरजा (पत्नी ) हमें सपोर्ट करेगी । मेरी पी.एच.डी.खत्म होने पर भी नौकरी तो कहीं मिलनेवाली नहीं है ।`[३]

विदेश में स्थित भारतीय लोगों के लिए तो नौकरी प्राप्त करने में और भी समस्या होती है ,इसका उल्लेख दिव्या के पति जयंत के संदर्भ में हुआ है -` कैनेडा से जयन्त के लिए इण्टरव्यूनामा आया है । अंग्रेजी पढाने के लिए कितनी कम नौकरियाँ हैं, और फिर भारतीयों को तो ज्यादा ही दिक्कत होती है ।`[४]

---

१ रुकोगी नहीं... राधिका ? - ऊषा प्रियंवदा - अक्षर प्रकाशन - पाँचवा संस्करण - १९८० - पृ.९२ ।

२ कितना बडा झूठ - ऊषा प्रियंवदा - राजकमल प्रकाशन - तृतीय संस्करण - १९७६ - पृ.९८ ।

३ शेषयात्रा - ऊषा प्रियंवदा - राजकमल प्रकाशन - प्र.सं.१९८४ - पृ.३७ ।

४ - वही - पृ. ८१ ।

नौकरी में होनेवाली इन मुसिबतों के कारण कभी-कभी अनिच्छा से भी किसी पद को स्वीकृत करना पडता है । ' झूठा दर्पण ' कहानी में इस समस्या का उल्लेख मिलता है । इस कहानी का यति विदेश से उच्चशिक्षा प्राप्त कर स्वदेश लौट आता है, पर यहाँ आने पर उसकी योग्यतानुरूप कोई पद खाली नहीं होता इसीलिए उसे जो पद रिक्त था उसी को स्वीकार करना पडता है । यह बात मीरा और अमृता के बातचित से स्पष्ट हो जाती है । मीरा कहती है -- '... फिर फादर कहते हैं कि विदेशी भाषाएँ पढानेवाले अध्यापक के लिए आगे क्या चान्स है ? असल में यति जब फ्रान्स से लौटा, तो विभाग में कोई जगह न थी । फ्रेंच पढाने का पोस्ट थी, ग्रेड एक ही था, यति ने वही स्वीकार ली ।'[1]

आज यह बेरोजगारी हमारे समाज की अत्याधिक ज्वलंत एवं भयावह समस्या बन गयी है । क्योंकि यह बेकारी शिक्षित युवकों की है । समाज का शिक्षित युवा वर्ग अगर असंतुष्ट होगा तो समाज की उन्नति के लिए हानीकारक सिध्द होगा । इस संदर्भ में डॉ. स्वर्णलता का कथन है --' शिक्षित बेकारी अशिक्षित बेकारी से भी भयानक है, क्योंकि बुध्दिजीवी यदि भूख की ज्वाला से पीडित रहेगा तो देश का विकास नहीं हो सकता, समाज का विघटन होने लगेगा, सरकार भी सुव्यवस्थित तरीके से कार्य नहीं कर सकेगी ।'[2]

नौकरीपेशा नारी की समस्या --

आज के सामाजिक परिदृश्य में नारी की स्थिति में आये परिवर्तन का

---

१ एक कोई दूसरा - उषा प्रियंवदा - अक्षर प्रकाशन - द्वि.सं.-१९६६-पृ.४२

२ स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि - डॉ. स्वर्णलता - प्र.सं.- १९७५ - विवेक पब्लिशिंग हाउस - पृ. २३३ ।

सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि वह पुरुष के समान ही जीवन के सभी क्षेत्रों में कार्यरत है । नवशिक्षिता नारी ने जब यह जान लिया कि उसकी दासता का महत्वपूर्ण कारण उसकी पुरुषवर्ग पर होनेवाली आर्थिक निर्भरता है । तब वह भी अपने चुल्हे-चौकेवाले सीमित दायरे को छोडकर अर्थार्जन करने के लिए विस्तृत समाज में निकल पडी । नारी के इस पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने की प्रवृत्ति से उसकी मानसिक स्थिति, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, प्रेम आदि संबंध में दृष्टि के परिवर्तन आया परंतु इस क्षेत्र में उसे भीतर और बाहर से बहुत कुछ टूटना भी पडा है । सुबह से शाम तक नौकरी के काट-कोट में मर - खपकर जब वह अपने घर लौटती है, तो उसे अनेक पारिवारिक दायित्व निभाने पडते हैं । विवाह के पूर्व नौकरी करती नारी को अपने पिता के परिवार के लिए टूटना पडता है, तो विवाह के पश्चात् पति के परिवार के लिए , मानो तिल-तिल कर गलकर सबको संतुष्ट करना ही उसकी अंतिम नियति है । प्रियंवदाजी के 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' उपन्यास में पिता के परिवार के लिए टूटी युवती का चित्रण मिलता है । इस उपन्यास की सुषमा परिवार के उत्तरदायित्व के कारण अपने प्रेमी नील से चाहकर भी विवाह नहीं कर सकती । अपनी इस विवशता को प्रकट करते हुए वह कहती है -- 'मेरी जिंदगी अब खत्म हो चुकी है । मैं केवल साधन हूँ । मेरी भावना का कोई स्थान नहीं । विवाह करके परिवार को निराधार छोड देना मेरे लिए संभव नहीं ।'[1]

'संबंध' कहानी के पूर्वार्ध में भी एक ऐसी लडकी की वेदना दिखाई देती है - जो परिवार को पालने और चलाने के लिए बहुत कुछ टूट गयी है - 'उसे बडा गुस्सा आ जाता, एक निरुपाय,बेसहारा आक्रोश कर तो दिया सब

---

1 पचपन.खम्भे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - राजकमल प्रकाशन - चतुर्थ संस्करण - १९६८ - पृ.६० ।

के लिए, जितना हो सका, जैसे जिया ने चाहा, पर अब भी क्यों वह बोझा ढोये जाए । बाबू की मृत्यु के बाद, उसने घर संभाल लिया था, एक भावुक कर्तव्य के वश, पर अब क्यों वे सब उसे अपनी जिंदगी नहीं जाने देते - जैसे भी वह चाहे ।'[1]

आज समाज में कामकाजी युवतीयों के विवाह की समस्या गंभीर रूप ले रही है । आज यह स्थिति दिखाई देती है, कि अगर किसी परिवार में कमानेवाला पुरुष न हो,तो उस परिवार का कामकाजी जेष्ठ पुत्री को ही परिवार का बोझा उठाना पडता है । परिवार के उत्तरदायित्व को निभाते हुए उसके विवाह का प्रश्न ही बुझा जाता है । उम्र का एक दौर तो यौवन -सुलभ भावुकता में गुजर जाता है, लेकिन उम्र की उत्तरावस्था में उसके समूचे अस्तित्व को निर्दय एकाकीपन डस जाता है, जिससे वह घुटन, पीडा एवं संत्रास से पीडित हो जाती है । परिणामतः उसमें मानसिक विकृति निर्माण होती है । 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' उपन्यास की मिस दुर्गा शास्त्री इसका उदाहरण है --'तप्त धरती की तरह मिस शास्त्री, जिनकी निराशाओं ने उनका जीवन के प्रति पूरा दृष्टिकोण विकृत कर दिया ।'[2] इस उपन्यास की सुषमा अभी इस स्थिति तक नहीं पहुँची है, पर उसके टूटने की शुरुआत हो गयी है । वह अपने भविष्य को भयंकर परछाइयों को भाँप चुकी है । वह मीनाक्षी से कहती है --' पैंतालिस साल की आयु में मैं भी एक कुत्ता या बिल्ली पास पाल लूँगी । उसे साने से लगा रखूँगी ... आज से सोलह साल बाद शायद तुम अपनी बेटी को लेकर इस कॉलेज में आओ, तब भी तुम मुझे यही पाओगी । कॉलेज के पचपन खम्भों की तरह स्थिर अचल ।'[3]

जिस प्रकार अविवाहित कामकाजी नारियों को अपने परिवार के उत्तर-

---

१ कितना बडा झूठ - उषा प्रियंवदा - राजकमल प्रकाशन - द्वि.सं.- १९७५ - पृ.१९ ।

२ पचपन खम्भे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - राजकमल प्रकाशन - चतुर्थ संस्करण- १९८४ - पृ.६३ ।

३ - वही - पृ.१०६ ।

दायित्व को निभाते हुए अनेक समस्याओं का सामना करना पडता है उसीप्रकार विवाहित कामकाजी नारी को भी कई समस्याओं से टकराना पडता है । उसमें महत्वपूर्ण समस्या यह है , कि ससुरालवालों का उनके प्रति व्यवहार, उसके प्रति भावनायें । प्राय: ससुरालवालों की यह अपेक्षा होती है, कि बहु एक तो नौकरी के पैसे जो कमा कर लाती है वह उन्हें दे दे और दूसरे यह की वह सामान्य रूप से जैसे अन्य विवाहित स्त्रियाँ घर में काम करती है, वैसे ही घर में काम भी करे । इस कारण परिवार में संघर्ष की स्थिति निर्माण हो जाती है । प्रियंवदाजी के 'कोली छाँह ' कहानी में एक ऐसा प्रसंग दिखाई देता है । सास अपने बहु के बारे में कहती है --' पढी-लिखी है तो क्या कोई जान दे दे । आज कल एम.ए.बी.ए. लडकियाँ गली-गली मारी फिरती है । बडा घमंड है अपनी कमाई का । है तो अपने पास रख है । कौन हमें देदी ।'[1]

नारी के नौकरी करने से परिवार को आर्थिक आधार प्राप्त हुआ है । नारी के आज आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन गयी है । परंतु इस स्थिति में भी वह सुखी नहीं है । इसका महत्वपूर्ण कारण यह है, कि अब वह अपने परिवारवालों के लिए केवल अर्थप्राप्ति का साधन बन गयी है जिससे उसकी स्वाभाविक भाव - भावनाओं का उपेक्षा होती रही है । इस संदर्भ में पारुकान्त देसाई लिखते है -- ' हमेशा से नारी का किसी-न-किसी रूप में शोषण हुआ है । प्रत्येक युग में तदर्थ नये-नये शस्त्रस्त्रों को अविष्कृत किया गया है तथा प्रत्येक बार उसकी नोंक अधिकाधिक पैनी व तेज हुई है । आज की परिवर्तित परिस्थितियों तथा बदलते जीवन मूल्यों में नारी भी आर्थिक विषमताओं की विभिषिकाओं में अभिशप्त जीवन व्यतीत कर रही है, अब उसका आर्थिक शोषण का भी प्रारंभ हो गया है ।'[2]

---

१ जिंदगी और गुलाब के फूल - उषा प्रियंवदा - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन - पृ.९४ ।

२ साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास - पारुकान्त देसाई - पूर्व प्रकाशन - प्रथम संस्करण - १९८४ - पृ.१२८ ।

'स्वीकृति' कहानी की जया भी इसी स्थिति से पीड़ित है । उसका पति सत्य उसकी भावनाओं की उपेक्षा कर उसे केवल अपने आर्थिक उन्नति का सहायक मानता है - 'सत्य ने जया के रूप - रंग, उसकी भावनाओं या इच्छाओं पर कभी ध्यान नहीं दिया । जया सदा उसके लिए एक निमित्त रही है । अपनी आकांक्षाओं की मूक श्रोता, अपनी उन्नति की सहायक ।'[1]

इन पारिवारिक समस्याओं के अतिरिक्त नौकरीपेशा नारी को अनेक मानसिक तनावों का भी सामना करना पड़ता है । नौकरी की एक रसता से ऊब गयी नारी अपने जीवन को अर्थहीन महसूस करने लगती है । 'छुट्टी का दिन' कहानी में यह समस्या दिखाई देती है । इस कहानी की माया नौकरी के कारण अपने घर से दूर शहर में अकेली रहती है । धोने के लिए डाले गये ब्लाउज का रंग दूसरे कपड़ों पर लग जाने से उसके जीवन में छायी ऊब और एकरसता उभर आती है - 'एक ब्लाउज का पीला और हरा रंग निकलकर दूसरे ब्लाउजों और सफेद सिल्क की साड़ी में लग गया था । दोष अपना ही था, फिर भी न जाने क्यों उसे रोना आ गया । रेशमी ब्लाउज के कच्चे निकल जाने पर नहीं, बल्कि अपने जिंदगी के पैटर्न पर, उसके खोखलेपन और सारहीनता पर । किसलिए वह घर-बार छोड़कर इतनी दूर आकर पड़ी थी, किसलिए वह सुबह से शाम तक कालेज में मगजपच्ची करती थी । इसलिए की जिंदगी के एक-एक दिन करके गुजरते जाए और एक दिन वह सोचे कि इस जीवन में उसने क्या पाया, तो पता चले कि वह एक लंबे मरुस्थल की तरह था ।'[2]

इसके अतिरिक्त 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' उपन्यास की सुषमा तथा 'कोई नहीं' कहानी की नमिता द्वारा भी नौकरी के संकुचित जीवन का ऊब

---

1 कितना बड़ा झूठ - उषा प्रियंवदा - तृतीय संस्करण - १९७६ - राजकमल प्रकाशन - पृ. ८७ ।

2 मेरी प्रिय कहानियाँ - उषा प्रियंवदा - राजपाल एण्ड सन्स - प्र.सं. १९७४ - पृ. १२३ ।

तथा विसंगति से उत्पन्न अर्थहीनता की समस्या दिखाई देती है ।

नौकरीपेशा नारी को कभी कभी नौकरी के कारण संपर्क में आये पुरुषों के वासनात्मकदृष्टि के आपत्ति से भी टकराना पडता है । ' पचपन खम्भे लाल दीवारें ' उपन्यास में एक जगह पर इस समस्या का झलक मिलती है - ' एम.ए.. करने के बाद मैंने एक प्राइवेट कॉलेज में नौकरी की । वहाँ के सेक्रेटरी नगर के पुराने रईसों में थे । उन्होंने किस वस्तु का प्रलोभन नहीं दिया मुझे, पर मैंने वह नौकरी छोड दी । ' [1]

इस प्रकार आज का नौकरी पेशा नारी को अनेक परिस्थितों का सामना करना पडता है । परंतु फिर भी ' भारतीय नारी का मन न जाने किस धातु से निर्मित होता है , जो उसमें इतनी शक्ति और सहिष्णुता आ जाती है । जीवन में संघर्षों के तूफान झेलते हुए भी वह अपने पथ पर चलता ही रहती है विचलित नहीं होती । ' [2]

नैतिकता की समस्या --

आधुनिक युग की परिवर्तित परिस्थितियों के कारण परंपरागत नैतिक मान्यताओं का स्थान अब नई नैतिक मान्यतायें ले रही है । नये पुराने नैतिक मूल्यों के टकराव से आज नैतिकताके संकट की स्थिति उत्पन्न हो गयी है । ' आज का नैतिकता विगत युग की नैतिकता से पूर्णत: पृथक है । आधुनिक युग की जीवन स्थितियों ने हमारे नैतिक प्रतिमानों या बनी बनायी इमेज ' को निर्ममता से तोडा है । ' [3] हमारे समाज ने अब परंपरागत नैतिक मान्यताओं को अस्वीकार करने की प्रक्रिया अपनायी है । और इसमें समाज का युवा वर्ग अग्रेसर रहा है ।

---

१ पचपन खम्भे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - राजकमल प्रकाशन - चतुर्थ संस्करण- १९८४ - पृ.५९ ।

२ हिन्दी उपन्यासों में नारी - डॉ.शैल रस्तोगी - विभु प्रकाशन - प्रथम संस्करण - १९७७ - पृ.२८१ ।

३ समकालीन कहानी युगबोध का संदर्भ -- डॉ.पुष्पपाल सिंह, नेशनल पब्लिशिंग ह- हाउस, प्रथम संस्करण -१९८६ -पृ.९४ ।

प्राचीन नैतिक मूल्यों के भंजन में परिस्थितियों ने भी गंभीर भूमिका प्रस्तुत की है ।

आज व्यक्ति अपने व्यक्तित्व में दोहरापन लिए जी रहा है । यही कारण है, कि उसके कथनी और करनी में अंतर दिखाई देता है । ' शेषायात्रा ' उपन्यास की शराब के नशे में डूबती किरत, अनु को बडे गर्व के साथ कहती है -- ' मैने लडकी बिल्कुल इण्डियन वॅल्यू में घडी है । '[1] जब कि अनु उसकी जवान बेटी को रात को सडक पर प्रेमी के बाहों में पाती है ।

प्रेम तथा विवाह संबंधी नैतिक मान्यताओं में भी अब परिवर्तन आ गया है । ' नैतिकता के नये बोध ने यौन-शुचिता की धारणा को मंजित कर काम को मात्र दैहिक, जैविक आवश्यकता के रुप में स्वीकारा । इस दृष्टि से प्रेम और विवाह का परंपरागत अवधारणाओं को समाप्त कर दिया । '[2] परंपरा में विवाह को एक धार्मिक बंधन माना जाने से विवाहित व्यक्ति का यह दायित्व रहता था, कि वह उस बंधन को जन्मान्त तक निष्ठा के साथ निभाये । परंतु अब यह नैतिक मान्यता समाप्त हो रही है, यहाँ तक कि विवाह की सार्थकता को प्रश्नांकित किया जा रहा है । ' प्रतिध्वनि ' कहानी की वसू अपने पति से तलाक प्राप्त करने के बाद मुक्ति के अहसास से कहती है ' एक मिनिंगलेस-सी रस्म ' ने हमें बाँध दिया था । अब हम दोनों ही मुक्त है । '[3]

आज यह आवश्यक नहीं है, कि जिससे प्रेम हो, उसी से विवाह भी, और जिससे विवाह हो उससे प्रेम भी । ' मोहबंध ' कहानी की नीलू विवाहपूर्व अनेक युवकों से प्रेम करती है, तथा विवाह किसी अन्य से । विवाह पूर्व यौन संबंधों को मान्यता दी जाने लगी है । पाश्चात्य देशों में इस दृष्टि से ' डेटिंग ' की प्रथा रुढ है, आज भारतीय समाज में भी यह मूल्य स्थान ले रहा है । ' शेषायात्रा '

---

१ शेषायात्रा - उषा प्रियंवदा - राजकमल प्रकाशन - प्र.सं.१९८४ - पृ.३३

२ समकालीन कहानी युगबोध का संदर्भ - डॅा.पुष्पपालसिंह ,- नेशनल पब्लिशिंग - हाऊस - प्रथम संस्करण - १९८६ - पृ.९९ ।

३ कितना बडा झूठ - उषा प्रियंवदा - राजकमल प्रकाशन - तृतीय संस्करण - १९७६ - पृ.२७ ।

उपन्यास की विभा को इस बात पर विस्मय होता है, कि विवाह के पूर्व प्रणव ने अनु के साथ ' डेटिंग ' नहीं की। इस उपन्यास के उत्तरार्ध में अनु और दिपांकर के विवाहपूर्व आये यौन संबंधों का जिक्र मिलता है। इस नयी नैतिकता के कारण कौमार्य तथा ब्रह्मचर्य आदि परंपरागत नैतिक मूल्यों के -हास की समस्या उत्पन्न हो गयी है।

दाम्पत्यजीवन संबंधी परंपरागत नैतिक मूल्य भी शिथिल हो रहे हैं। एकनिष्ठता की माँग अब अनुचित प्रतीत हो रही है। नयी नैतिकता के अनुसार अच्छे पति-पत्नी को एक दूसरे के आचरण के प्रति मौन धारण करना चाहिए। ' शोभायात्रा ' उपन्यास के डॉ. शहा उनकी पत्नी विभा और प्रणव के संबंधों को जानते हुए भी मौन धारण कर लेते हैं। ' ट्रिप ' कहानी में भी यह स्थिति दिखाई देती है। इस कहानी नायिका का पति इस बात को जानते हुए भी, कि उनकी पत्नी विवाहबाह्य आचरण करती है चूप रहते हैं। अब यह भी माना जाने लगा है, कि पति और प्रेमी तथा पत्नी और प्रेमिका दो पृथक व्यक्ति हो सकते हैं। ' शोभायात्रा ' उपन्यास की विभा इस मान्यता को अत्यंत स्पष्ट रूप से प्रकट करते हुए कहता है -- ' एक आदमी प्रेमिका भी रख सकता है, बीवी भी। '[१]

पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से आज हमारे समाज में स्वच्छन्द प्रेम और उन्मुक्त यौनाचार के मूल्य स्थान प्राप्त कर रहे हैं। ' विकासमान नई नैतिकता का आग्रह है, कि धर्म काम ' का विरोधी न रहे। काम भावना प्राकृतिक माँग है। धर्म, पाप-पुण्य, नीति, अनीति, पवित्रता आदि से काम-भावना का कोई संबंध नहीं है। '[२] अर्थात् आज यौन भावना का सीधा संबंध आनंद से माना जाने लगा है। नई दृष्टि में सेक्स और संतति दो पृथक् बाते हैं। सेक्स केवल सेक्स के लिए है तथा संतति से उसका कोई संबंध नहीं। ' शोभायात्रा ' उपन्यास का प्रणव इस नई

---

१ शोभायात्रा - राजकमल प्रकाशन - प्रथम संस्करण - पृ. २५।

२ स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास - मूल्य संक्रमण - डॉ. हेमेन्द्रकुमार पानेरी - संघी प्रकाशन - प्रथम संस्करण - १९७४ - पृ. १३७।

मान्यता का समर्थक है । इसीलिए वह अपने विवाह के पश्चात् तुरंत बच्चे नहीं चाहता । बच्चों का विचार ही उसे बोर कर देता है, वह अपनी पत्नी अनु से कहता है -- 'अभी बच्चे नहीं -- ।'... पहले एंजाय करना चाहिए, बाद में बच्चे ।'[1] 'ट्रिप' कहानी में भी यही मान्यता दिखाई देती है । इस कहानी नायिका का पति अपने पत्नी को उन्मुक्त यौनाचार की स्वतंत्रता देता है । उसकी केवल दो शर्तें हैं -- 'एक वह अपने अफेयर चुपचाप कन्डक्ट करेगी, दूसरे, इस आयु में वह नये बच्चे की जिम्मेदारी नहीं लेगी, इसका वह ध्यान रखेगी ।'[2] अर्थात यहाँ यौन स्वच्छन्दता का उपभोग करते हुए भी संतति पर प्रतिबंध लगा है । 'प्रतिध्वनि' कहानी की वसु भी सेक्स और संतति को पृथक करनेवाली नैतिकता में विश्वास करती है । वह अपने पति साथ संतुष्ट नहीं है इसलिए वह अपने मातृत्व को एक जीवशास्त्रीय घटना मानती है -- 'रुचि का जन्म भी एक बायलॉजिकल घटना से अधिक न था ।'[3] इस संदर्भ में डॉ. कुमार विमल लिखते हैं -- 'पता नहीं, आज की मनुष्यता किस योनिमेध की तैयारी में है । एक ओर संतति निग्रह का सामाजिक पैमाने पर व्यापक प्रसार और दूसरी ओर यौन परिकल्पनाओं की यह उपासना । शायद ही किसी पूर्ववर्ती युग ने गर्भाशय का मुख बंद कर योनीशय का द्वार इस तरह उन्मुक्त किया होगा'[4]।

प्रेम और सेक्स में स्वेच्छाचार आने से श्लील और अश्लील का विवेक का अब कोई महत्व नहीं रहा है । अच्छे घर की लडकियाँ भी आज धन के लिए वेश्याओं

---

१ शेषयात्रा - उषा प्रियंवदा - राजकमल प्रकाशन - प्र.सं.१९८० - पृ.४७।

२ कितना बडा झूठ - उषा प्रियंवदा - राजकमल प्रकाशन - द्वितीय संस्करण - - १९७६ - पृ.९९ ।

३ - वही - पृ.३२ ।

४ अद्याधुनिक हिन्दी साहित्य - डॉ.कुमार विमल - पृ.२३१ - उद्धृत - 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास : मूल्य संक्रमण - डॉ.हेमेन्द्रकुमार - पानेरी - पृ.१३७ ।

जैसा व्यवहार कर रही है । 'रुकोगी नहीं,... राधिका ?' उपन्यास का एक अमेरिकन पात्र रॉडनी भारत के बारे में राधिका से बात करते हुए इसका उल्लेख करता है --' और भारतीय नैतिकता, आप बुरा न मानिए, सडक पर चलना मुश्किल, जबकि कोई साथ न लग जाय .... दिल्ली में भी यही । मुझे एक भारतीय मित्र ने ही बताया कि अच्छे, अच्छे घरों की लडकियाँ ...'[1] हमारी परंपरागत नैतिकता के अनुसार यौन-संबंधों के बारे में खुले आम से बात करना अश्लील माना जाता था, चाहे वह बात पति-पत्नी के बीच भी क्यों न हो । परंतु अब यह स्थिति बदल चुकी है । आज विवाहित स्त्री-पुरुष ही क्या, युवा लडके और लडकियाँ भी इस संदर्भ में खुलेपन से बात करते हैं । इतना ही नहीं युवा वर्ग के लिए आज यौन-शिक्षा की भी माँग हो रही है । 'शेषयात्रा' उपन्यास में नीरजा का इस विषय में पति से स्पष्टता से बात कहने का संकेत मिलता है -' नीरजा यह सब कैसे कह गयी, इतने खुलेपन, सहज भाव से । उसे शर्म भी नहीं आयी । पहली रात से ही ट्राई कर रहे थे, यानी उसने आलोक से बात की होगी ।'[2]

वर्तमान युग में नैतिक मूल्यों की समस्या और भी विकट इसलिए हो गई है, कि प्राचीन शास्त्रीय, धार्मिक अथवा ईश्वर संभूत धार्मिकता का आधार मानव संभूत नीति में खोजा जा रहा है । जो दायित्व अब तक धर्म पर था, वह सब मानव ने स्वयं ओढ लिया है ।'[3] आज ईश्वर की सत्ता की अस्वीकृति ने पाप-पुण्य और उनके आधार पर दंड की मान्यता को बदल दिया है । इससे इस जीवन और लोक के पश्चात् दंड-विधान का जो भय था, वह समाप्त हो गया । इसलिए व्यक्ति का कोई भी कृत्य आज पाप-बोध नहीं जगाता । वह एक जैविक प्रवृत्ति मानकर प्रेम

---

१ रुकोगी नहीं,... राधिका ?' उषा प्रियंवदा - अक्षर प्रकाशन - पाँचवा संस्करण - १९८० - पृ.९४ ।

२ शेषयात्रा - उषा प्रियंवदा - राजकमल प्रकाशन - प्रथम संस्करण -१९८४ - पृ. ३८

३ आत्मनेपद - अज्ञेय - पृ.१९६ - उद्धृत - हिंदी उपन्यास समाज और व्यक्ति का द्वन्द्व - डॉ. मंजुला गुप्ता - प्रथम संस्करण - १९८६ - सूर्य प्रकाशन - पृ.२३ ।

और वासना के कृत्य में संलिप्त होता है । 'टूटे हुए' कहानी का भास्कर प्रोफेसर कृष्णमूर्ति का पत्नी तन्नी से शारीरिक संबंध स्थापित करने के उपरान्त भी स्वयं को अपराधी नहीं महसूस करता - 'अगली सुबह, कान्फरेन्स की समाप्ति पर जब प्रोफेसर मुझे वापस ले चलने के लिए आये, तो मैं बिना किसी झिझक व अपराध भावना के उनके सामने हो सका ।' १

इसके अतिरिक्त प्रियंवदाजी के अन्य कहानियों तथा उपन्यास में भी नये नैतिकता से उत्पन्न समस्यायें दिखाई देता है ।

---

१ एक कोई दूसरा - उषा प्रियंवदा - अक्षर प्रकाशन - द्वितीय संस्करण - १९६९ - पृ. १४१ ।